आधुनिक संस्थागत संगीत शिक्षा व घराने एक समीक्षात्मक विवेचन

आकांक्षा सारस्वत
प्रवक्ता (अंशकालीन)
संगीतविभाग
आर.जी. पी.जी. कालिज, मेरठ

युग परिवर्तन सृष्टि का अबंधित नियम है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक वातावरण भी बदलते रहते हैं । अतः युगानुकूल संगीत शिक्षा की पद्धति में भी परिवर्तन होना अघटित–आश्चर्यजनक घटना नहीं है । प्राचीन गुरू शिष्य परम्परा की शिक्षा में भी अति प्राचीन, प्राचीन मध्यकाल, प्रारम्भ मध्य मध्योत्तर, वर्तमान पूर्व मध्य–वर्तमान इस प्रकार काल भेद दिखते हैं ।

प्राचीन काल में प्रचलित भारतीय संगीत पद्धति का अध्ययन करने पर स्पष्ट है कि उस समय भी संगीत में पृथक–2 मतों का प्रचार समय–समय पर रहा जैसे–शिवमत, ब्रह्ममत, नारदमत इत्यादि । भरत नंदिकेश्वर नारद और मतंग ये सभी विद्वान कलाऋषि एवं संगीतकार थे और इसी कारण इनकी संगीत कला अपनी विशिष्टताओं के कारण अलग–अलग जानी जाती थी । वैदिक काल में भी घरानों के समान, सामवेद की शैलियों रामायनी, जैमिनी, कौथुमी इत्यादि थी । मध्य युग में ध्रुपद की बानियां थी जैसे नौहार, खण्डहार, गोबरहार व डागुर आदि । ये ही सम्भवतः कालक्रम से मध्य युग में ध्रुवपद की चार प्रमुख बानियों के रूप में तदन्तर ख्याल के प्रचलन के बाद प्रमुख घरानों के रूप में हमारे सामने आते हैं ऐसा माना जा सकता है ।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ख्याल गीत प्रकार के सन्दर्भ में घराना यह एक विशिष्ट संकल्पना है । ध्रुपद गायन को पीछे कर ख्याल गायन ने जब प्रतिष्ठा पाई तभी से घरानों की संज्ञा प्रचार में आई ।

डॉ0 अबान ई. मिस्त्री ने कहा है कि–

"घरानों का उद्‌भव पिछली दो तीन सदियों से हुआ है ऐसा मानना ठीक नही होगा। इसके पूर्व भी घराने तो थे परन्तु उनका स्वरूप भिन्न था । वो कभी 'बानि' तो कभी 'मत' नामों से संबोधित किये जाते थे ।"

घराने का व्यापक अर्थ है ऐसी गुरू शिष्य प्रणाली जो कम से कम चार पांच पीढ़ियों से हो तथा जिसके गायन की अपनी एक विशेष शैली हो, संगीत में घराना कहलाती है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, संगीत में 'स्वर' और 'लय' दोनों मूलाधार हैं और इन्हीं के कम अधिक प्रमाण में प्रयोग कर उसको अपनी विशिष्टता बनाकर उस पर एकांतिक साधना कर बाद में उसे अपने शिष्य प्रशिष्यों में संकरित किया होगा किसी ने स्वर को प्रधान माना होगा तो किसी ने लय को, किसी ने दोनों को उचित मात्रा में प्रयोग कर सुन्दर कलाकृति का निर्माण किया होगा और इस प्रकार अलग–2 घरानों का निर्माण हुआ होगा ।

मुख्य घराने निम्न हैं–
ग्वालियर घराना
किराना घराना
आगरा घराना
जयपुर घराना

इन घरानों का अध्यापन कार्य गुरू शिष्य परम्परा के द्वारा ही हुआ करता था जो कि भारतीय संस्कृति की पूर्व परम्परा रही है ।

वर्तमान समय में संस्थागत शिक्षा प्रचार में है, जहाँ स्कूल कालेजों में संगीत शिक्षा एक विषय के तौर पर सिखाई जाती है । इन संस्थाओं में पाठयक्रम बनाकर परीक्षा आदि होना प्रारम्भ हुआ जो 'घराना' पद्धति में सम्भावित नही था और यहीं से संगीत में घराने का घरानापन धीरे–2 कम होता गया ।

गुरू शिष्य परम्परा व विद्यालयीन शिक्षा पद्धति

संगीत के प्राचीन साहित्य में संगीत शिक्षा प्रणाली का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वास्तव में संगीत विषयक किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ में संगीत की कक्षाओं या वर्गों का उल्लेख नहीं मिलता है । जहाँ लड़कों और लड़कियों को संगीत की शिक्षा दी जाती रही हो और संगीत का अभ्यास करते हों । यदि कोई शिक्षा थी भी तो वह थी व्यक्तिगत । जिसे गुरू शिष्य परम्परा कहते थे । फिर भी कवि कालिदास रचित "मालविकाग्निमित्रम्" में दो उस्तादों हरदत और गणराज में नृत्य शिक्षा पर प्रतिस्पर्धा और वाद विवाद का रूचिकर उल्लेख मिलता है । जिसमें वे छात्र नृत्य कला की शिक्षा देने और उसमें कला के उचित प्रबोधन की क्षमता के विकास के सही तरीकों पर विचार विमर्श करते हैं । प्राचीन प्रासादों से सम्बद्ध नाट्य सम्भवतः संगीत एवं नृत्य कथाएं ही थी । इनका संचना शाही दरबारों द्वारा किया जाता था। जिसका उद्‌देश्य समारोहों के अवसर पर उनके आदेश पर संगीत एवं नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना था । बताया जाता है कि प्राचीन तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध संगीत एवं नृत्य संस्कृति के केन्द्र थे । इस उल्लेख मात्र के अलावा हमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता जिससे हमें संगीत शिक्षण व्यवस्था का पता चलता हो ।

गुरू शिष्य संगीत शिक्षा प्रणाली

सामूहिक स्तर पर शिक्षा आरम्भ होने से पहले प्रत्येक स्थान पर गुरू शिष्य परम्परा थी । छात्रों की शिक्षा के लिए विशिष्ट विधा की व्यक्तिगत शिक्षा प्रणाली का अनुसरण प्राचीन काल में होता था । कला अथवा ज्ञान की विशिष्ट शाखा के लिए स्वाभाविक रूझान अथवा प्रतिभा वाले युवा को उसी विधा के विशेषज्ञ के पास भेजा जाता था और वहीं उसे प्रशिक्षण देता था । उन दिनों शिक्षा अमूल्य दान था। प्राचीन काल में महान कलाकार और विद्वान स्वयं ऐसे शिक्षार्थियों की खोज में रहते थे जिन्हें वे अपनी विधा और कला का दान कर सकें और जो ज्ञान दान के महत्व को समझ सकें तथा निष्ठा के साथ उसका अनुसरण कर सकें । ऐसे व्यक्ति ही महान कलाकारों के पास जाते थे और ऐसे व्यक्तियों को ही विद्वत्जन प्रेम और दिलचस्पी के साथ शिक्षा देते थे । ज्ञान और कला के कर्णधारों को उन दिनों राजाओं और नवाबों का उदार संरक्षण प्राप्त था । वे अपने छात्रों से प्रशिक्षण के लिए किसी प्रतिदान की न तो आशा करते थे और न ही उन्हें उसकी आवश्यकता थी । वास्तव में वे शाही संरक्षकों से उपहार और चंदे के रूप में प्राप्त भूमि और धन से अपने छात्रों के लिए वस्त्र भोजन की व्यवस्था करते थे । यह सत्य है कि वे अपने छात्रों से कठोर परिश्रम करवाते थे और कभी–2 तो छात्रों को गुरू की कष्टप्रद निजी सेवा भी करनी पड़ती थी। हो सकता है वह सब शिक्षा का एक अंग हो । शिक्षक का यह प्रेम श्रम के रूप में शिक्षा की भावना और छात्र की निष्ठा, शाही संरक्षण शिथिल होने के साथ ही समाप्त हो गई और शिक्षक को अपने आजीविका साधन की खोज के लिए बाध्य होना पड़ा । शिक्षार्थियों के लिए कला शिक्षा एक बहुत कठिन समस्या बन गई । उन्हें शिक्षकों से शिक्षण का अंश मात्र पाने के लिए भी निजी सेवा अथवा धन के रूप में भारी मूल्य चुकाना पड़ा । निष्ठावान छात्र उस्ताद की उद्देश्य पूर्ण विमुखता तथा सभी प्रकार की कठिनाईयों के बावजूद अपने निधार्रित पथ पर टिके रहे । इसी के फलस्वरूप वे अग्रणी कलाकार के रूप में सफल रहे । हाल के वर्षों के कई महान कलाकारों ने ऐसी स्थिति का सामना किया है ।

पेशेवर उस्तादों की परम्परागत प्रणाली के कई गुण हैं । नये विद्यार्थी की व्यवहारिक शिक्षा के लिए विशिष्ट परम्परा अथवा घराने में प्रवेश गंडा समारोह से होता है । जिसके अनुसार उस्ताद छात्र की कलाई पर गंडा बांधता है और कुछ पवित्र मंत्रोचरण करता है । छात्र के मुंह में दाने प्रदान कर प्रथम शिक्षा सूत्र का दान करता है । संगीत के मामले में मूल संगीत स्केल सरगम सिखाया जाता है । यह समारोह पावन समझा जाता था और उस्ताद व शार्गिद को कुछ अधिकार भी मिलते थे । वह उस्ताद के घर में निकट का सम्बन्धी व परिवार का सदस्य समझा जाता था । संगीत शिक्षा और प्रस्तुतिकरण में उसे उस्ताद और उस्ताद के सम्बन्धियों का समर्थन रहता था । इस प्रकार उस्ताद की निजी दिलचस्पी और उस्ताद शार्गिद के निकट सम्बन्ध के कारण छात्र को सभी प्रकार की कठिनाईयों के बावजूद लगन व साहस के साथ अध्ययन अभ्यास की प्रेरणा मिली । गंडा समारोह उस्ताद के संगीतकारों और शार्गिद के साथी छात्रों की उपस्थिति में होता था और छात्र को सार्वजनिक रूप से शार्गिद घोषित किया जाता था । गंडा समारोह के समय की गई भेंट के बाद शार्गिद से किसी फीस की आशा नहीं की जाती थी । छात्र से उस्ताद के घर में रहकर सेवा करने की अपेक्षा की जाती थी ।

शिक्षा देते हुए कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाता था । प्रथम पाठ था सुर भरना । शिष्य को अपनी श्वास क्षमता के अनुसार कंठ तारता के अनुरूप मंद्र सप्तक के मूल स्वर षड़ज पर रूकना होता था । यह अभ्यास नियमित रूप से प्रतिदिन प्रातः एक अथवा दो घण्टे करना पड़ता था । षड़ज की दीर्घता धीरे–धीरे बढ़ाई जाती थी । इस अभ्यास का उद्देश्य टिकाव, स्थिरता, शक्ति तथा आवाज की तारता का ज्ञान और श्वास नियंत्रण बढ़ाना था । इसमें उचित मार्गदर्शन अवश्य होता था, अन्यथा अधिक अभ्यास अथवा गलीत आवाज लगाने से आवाज के फटने का डर रहता था या गलत सुर बैठ जाने का भय रहता था । इसलिए उस्ताद अपनी निगरानी में शिष्य को अभ्यास करवाते थे । यह अभ्यास कई महीने तक चलता था । उस्ताद तब तक आग्र की तालीम नहीं देते थे जब तक उन्हें इसका संतोष नहीं हो जाता कि शार्गिद ने आवश्क शक्ति, क्षमता व स्थिरता प्राप्त कर ली है । हमारे आज के छात्रों में महीनों तक मात्र सा का अभ्यास करने का धैर्य और समय कहाँ है । किन्तु प्राचीन काल के छात्र इन निर्देशों का दृढ़तापूर्वक पालन करते थे । सुर भरना के अभ्यास के दौरान वे छात्र उत्तम संगीत और संगीतज्ञों के सम्पर्क में रहते थे । क्योंकि उनके उस्तादों के घरों में संगीत सभाएं तथा संगीत विषयक विचार विमर्श होता रहता था । सुर भरना अथवा आवाज को सांगीतिक बनाने की पूरी प्रक्रिया होने तक वे सैकड़ों संगबीत सभाएं देख सुन चुके थे और घरेलु वातावरण में संगीत के व्यवहारिक पहलुओं पर विभिन्न विचारों का श्रवण कर चुके होते थे । उत्कृष्ट सांगीतिक बंदिशों और कलापूर्ण आलाप से उन छात्रों के कान गुंजरित हो चुके थे । उनके कानों को स्वतः एक शिक्षण मिल चुका होता था।

शार्गिद द्वारा आवाज की स्थिरता एवं शक्ति प्राप्त कर लिए जाने के बाद उसका दूसरा पाठ होता था सरल स्केल का अभ्यास, जिसे बढ़ी लय में करना होता था । सामान्यतः यमन, बिलावल, भैरवी जैसे कुछ मूल ठाठों के सरल आरोह–अवरोह का अभ्यास खुली आवाज में करना होता था । इनके यमन, खमाज, भैरव जैसे रागों में ध्रुपद शैली के कुछ सरल गीतों और उन्हीं रागों में ख्याल शैली के कुछ रागों की स्वर संगतियों का अभ्यास करना होता था । हालांकि शिक्षा का कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था । उस्ताद जो कुछ सिखातेक थे, वहीं पाठ्यक्रम माना जाता था । शिष्य के आवाज धर्म, सांगीतिक कौशल, स्मृति, सामान्य पात्रता और प्रगति के अनुसार अलग–2 होती थी । स्वर, ज्ञान, अभ्यास क्रम जैसा कुछ नहीं था। इस प्रणाली में छात्र अपनी स्मृति के आधार पर उन रागों और गीतों पर ध्यान केंद्रित करता जो उसे सिखाए हुए होते थे और जो प्रभाव उस पर पड़ता था वह उसी का अभ्यास सैकड़ों बार तब तक करता, जब तक वह स्वयं उसके दिलो दिमाग में जम नहीं जाता । इसी अभ्यास के कारण पचास वर्ष के बाद भी गुरू से सीखा गायन वह उसी रूप में गाता था ।

प्राचीन प्रणाली में संगीत के व्यवहारिक पक्ष पर जोर दिया जाता था । कला के बौद्धिक अध्ययन जैसी कोई बात नहीं थी । संगीतज्ञ मात्र अच्छे प्रदर्शक थे । वे क्या गा बजा रहे हैं । इसका विश्लेषण नहीं कर सकते थे । व्यवहारिक प्रस्तुतिकरण के नियमों

से वे भली भांति परिचित थे । इस प्रणाली के अन्तर्गत अच्छे व्यवहारिक संगीत प्रदर्शकों के साथ मिलना और उनसे बराबर सम्पर्क रखना आवश्यक था ।

विद्यालयीन संगीत शिक्षा प्रणाली

भारत में संगीत विद्यालय की स्थाना का प्रथम रिकाड्ड बड़ौदा स्टेट म्युजिक स्कूल का है । जिसकी स्थापना गत शताब्दी के 90 के दशक में किसी समय हुई। इस स्कूल का संचालन स्व0 मौलाबख्श घिसे खां द्वारा किया जाता था । संगीत में स्कूल प्रशिक्षण के अनुसार प्रशिक्षार्थी को एक दो वर्ष के लिए स्वर ज्ञान के पाठ दिये जाते हैं । जिससे तृतीय वर्ष में प्रवेश करने तक वह संगीत के सभी स्कूल और हिन्दुस्तानी संगीत के सभी बारह मूल सेमीटोन से परिचित हो जाता है। इस प्रकार व स्वर लिपि की पुस्तक से गीत की रूपरेखा सीख सकता है । इन स्कूलों के लिए अध्ययन और अभ्यास का स्तरीय पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है । पांच वर्षों की अवधि में शिक्षार्थी लगभग पचास रागों में ध्रुपद, ख्याल के लगभग आधा दर्जन गीतों, तरानों, कुछ ठुमरियों, टप्पे और अपने पाठ्यक्रम के रागों के आलाप–तान से पूर्णतया परिचित हो जाता है । फिर भी देखने में आता है कि मुश्किल से पांच प्रतिशत छात्र ही व्यवहारिक संगीत प्रदर्शक बनते हैं । इसके लिए सामूहिक शिक्षा प्रणाली जो स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाती है उसमें कई खामियां हैं । यह आशा नहीं की जा सकती कि विश्वविद्यालय से निकला प्रत्येक विद्यार्थी एक प्रतिष्ठित कलाकार ही बनेगा ।

स्कूल के लिए प्रथम और अत्यन्त आवश्यक बात है संगीत कला में विशेषज्ञता के लिए आवाज के गुण, धर्म, प्रवृत्ति और अनुकूल आर्थिक स्थिति के अनुसार छात्रों का चुनाव तथा ऐसे छात्रों के लिए स्कूल की तरफ से छात्रावास की व्यवस्था करना। अच्छे कलाकारों को नियुक्त करके छात्रों को व्यवहारिक शिक्षा दिलाने तथा राग विस्तार का आदर्श प्रस्तुत करवाने की स्थिति में छात्र अच्छे कलाकार बन सकते हैं । स्कूल शिक्षा प्रणाली में बड़े–बड़े उस्ताद शिक्षा देने से कतराते हैं । क्योंकि उन्हें तो अपने कार्यक्रमों से ही फुरसत नहीं मिलती । इस कारण वे छात्रों को समय ही नहीं दे सकते । हाँ आजकल संगीत विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संगीत सम्मेलनों में बड़े–बड़े कलाकारों का गायन वादन सुनकर छात्र लाभान्वित अवश्य हो रहे हैं ।

स्कूलों में वायस कल्चर पर अभी पूरा ध्यान नहीं दिया जाता है । आवाज की तारता और गुणधर्म के अनुसार छात्रों का उचित वर्गीकरण करके तार्किक आवाज तैयार करने की व्यवस्था नहीं है । प्रत्येक छात्र को वही पाठ्यक्रम लेना और अभ्यास करना पड़ता है चाहे वह उसकी आवाज के गुण, धर्म और रूचि प्रवृत्ति के अनुकूल हो या न हो । निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा कर परीक्षा पास करने की उत्सुकता के कारण छात्र का ध्यान और रूचि वर्ष में दिये गये पाठ के सांगीतिक आवाज से हट जाता है । वह ताल, आलाप को रट लेना परीक्षा के लिए आवश्यक समझने लगता है । प्रवेश लेने वाले अधिकांश छात्रों में से मुश्किल से दस प्रतिशत छात्र संगीतज्ञ बनने के लक्ष्य से गम्भीरता से आगे बढ़ते हैं ।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली और पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्वर ज्ञान का अच्छा आधार छात्रों के लिए इस विद्या को समझने और आगे चलकर इसके विकास के लिए बड़ा सहायक है, किन्तु आम तौर पर छात्रों की प्रवृत्ति परीक्षा के एक दो माह पूर्व पाठ रट लेने की होती है ।

प्रारम्भिक स्वर, ज्ञान गीतों की पाठ्य पुस्तकों और संगीत शास्त्र ने आधुनिक संगीत छात्रों में अति विश्वास जाग्रत कर दिया है और इस प्रकारी नियमित एवं निरंतर संगीत अभ्यास के महत्व को उसने भुला दिया है । वह केवल रटी हुई चीजें गाता है । यदि वे छात्र नियमित अभ्यास करें तो वे अच्छे कलाकार बन सकते हैं । आजकल आधुनिक तकनीकों की बदौलत छात्र सही नियमित अभ्यास के कारण बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं और कर भी रहे हैं ।

विद्यालयीन शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए हमें ऐसी संगीत संस्थाओं की स्थापना करनी चाहिए जहाँ आधुनिक और गुरू शिष्य परम्परागत प्रणालियों का समन्वय कर सकें । संगीत में विशेषज्ञता प्राप्त करने और संगीत का अभ्यास और गम्भीर अध्ययन करने के इच्छुक छात्रों के लिए किसी प्रकार की कमी नही रहेगी । सुयोग्य शिक्षकों द्वारा ऐसे माहौल में हम अच्छे कलाकारों के पनपने की आशा स्कूल शिक्षा प्रणाली से भी कर सकते हैं ।

गुरू शिष्य परम्परा व विद्यालयीन संगीत शिक्षा पर विचारणार्थ आयोजित इस परिसंवाद का महत्व इस दृष्टि से विशेष रूप से है । क्योंकि इस विद्यालयीन संगीत शिक्षा का शुभारम्भ स्व. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने सन् 1901 को लाहौर में किया था । सन् 2000 में इसकी शताब्दी पूरी होने जा रही है । इतने लम्बे समय तक किसी शिक्षण पद्धति का चलना जहाँ अपने आप में महत्वपूर्ण हैं वहीं इस शिक्षण पद्धति से जुड़े लोगों को भलीभांति विदित है कि लगभग विगत 25 वर्ष से इसमें दोष पनपने प्रारम्भ हो गये है । सोचनीय स्थिति यह है कि ये दोष दिनों दिन बढ़ते जा रहे हैं । जिसके कारण इस पद्धति की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लग रहे हैं । निश्चय ही इस पद्धति की कुछ कमियाँ हैं परन्तु यह भी सत्य है कि इसके कारण महत्वपूर्ण अनेक अनुसंधान कार्य भी हुए हैं तथा वर्तमान में इसकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता । जिस स्वर लिपि पद्धति को इस शिक्षा के लिए आवश्यक माना जाता है । उसकी घरानेदान शिक्षा के नाम खुले आम अवहेलना की जा रही है । इस पद्धति से जुड़े शिक्षक विद्यार्थियों न बंदिशों को स्वर लिपि लिखाते न तान–अलाप लिखाते बनता है । इसका परिणाम यह होता है कि 5–7 वर्षों तक सीखने के पश्चात विद्यार्थियों के पास विद्यानार्जन की पूंजी में कुछ भी संचित नहीं रहता । आज पं0 पलुस्कर व पं0 भातखण्डे से सीधे जुड़े शिष्यों में से जहाँ तक मुझे ज्ञात है कोई जीवित नहीं है ।

उनके शिष्यों के कुछ शिष्य अंगुलियों में गिनने लायक बच गये हैं उन सबको और अन्य लोगों को जो गम्भीरता से इस पद्धति से जुड़े रहे हैं उन सबको उसमें परिसंवाद में एक स्थान पर एकत्रित करने की अत्यन्त आवश्यकता है । इसमें इस शिक्षण पद्धति पर गम्भीरतापूर्वक भविष्य की दृष्टि से विचार किया जाना सम्भव हो सके । यह कार्य कोई विश्वविद्यालय कर सकता है और ऐसे संवाद

के लिए केन्द्रीय शिक्षा विभाग तथा भारतीय शिक्षा विभाग से सहयोग मिल सकता है ।

निष्कर्ष

संगीत की आधुनिक शिक्षा पद्धति से एक लाभ हुआ कि 'कानसेन' तैयार हुए, संगीत में शौक उत्पन्न हुआ, संगीत शिक्षा प्रत्येक के लिए सुलभ हो गई, रोजगार के अवसर प्राप्त हुए । अपवाद स्वरूप एकाद संगीतज्ञ भी तैयार हुए फिर भी उन्हें संगीत के साम्राज्य में स्थापित होने के लिए घरानेदार कलाकार का नाम पीछे लगाने की आवश्यकता महसूस होने लगी ।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में समय की कमी, नियत कोर्स का बंधन, एक साथ कई विद्यार्थियों को पढ़ाना तथा विद्यार्थियों द्वारा सिर्फ एक या दो रागों को करके ही पास होना इन सभी कारणों से संगीत के स्तर में गिरावट आई । आज भी घरानेदार गायकों द्वारा तैयार शिष्य एवं संस्थागत शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी में फर्क दिखाई देता है । जो आधुनिक शिक्षा की कमी को स्पष्ट करता है । अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आज की आधुनिक शिक्षा पद्धति प्राचीन संगीत घरानों की बराबरी नहीं कर सकती । आज संगीत माध्यम के द्वारा रोजगार के अवसर कम होने की वजह से शिक्षार्थी इस विषय को लेने में रूचि नहीं दिखाते, इस कारण हमारी इस अमूल्य विरासत का शनै–शनै ह्रास होने लगा है । आधुनिक शिक्षा पद्धति से अपेक्षाकृत बहुत ही कम कलाकारों का निर्माण हो रहा है । अतः इस ओर ध्यान देना हमारे संगीतज्ञों व सरकार को अत्यावश्यक है।

सन्दर्भ सूची :–

डॉ0 अलकनंदा व डॉ0 हरी सिंह–शास्त्रीय संगीत शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान, आदित्य पब्लिशर्स ।
डॉ0 चौबे सुशील कुमार–संगीत के घरानों की चर्चा ।
डॉ0 दत्ता पूनम–भारतीय संगीत शिक्षा और उद्देश्य ।
देशपाण्डे वामनहरी–घरानेदार गायकी ।
डॉ0 ठाकुर सूरत–संगीत मंजरी
डॉ.0 अलकनंदा पलनीटकर–शास्त्रीय संगीत शिक्षा (समस्याएं एवं समाधान)